**ISSN Print:** 2394-7500
**ISSN Online:** 2394-5869
**Impact Factor:** 5.2
IJAR 2020; 6(4): 371-373
www.allresearchjournal.com
Received: 12-02-2020
Accepted: 17-03-2020

**रवि रंशुमान्**
ग्राम+पत्रालय–गोगरी, जिला–खगड़िया, बिहार, भारत

**Correspondence Author:**
**रवि रंशुमान्**
ग्राम+पत्रालय–गोगरी, जिला–खगड़िया, बिहार, भारत

# गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास

## रवि रंशुमान्

**प्रस्तावना**

गीतिकाव्य का उद्गम ऋग्वेद की ऋचाओं से माना जाता है। उनमें अग्नि, इन्द्र, विष्णु आदि देवों के प्रति विविध ऋषियों के द्वारा की गयी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। भक्तों का समर्पण–भाव इन स्तुतियों में श्लाघनीय है। इन्द्र के प्रति एक ऋचा में कहा गया है–

तुञ्जे–तुञ्जे य उत्तरे, स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्।।[1]

अर्थात् विविध वस्तुओं का दान करनेवाले अन्य देवों के लिए जो स्तोत्र (अच्छे माने जाते) हैं उन्हें मैं इन्द्र की स्तुति के लिए उपयुक्त स्तोत्र नहीं मानता। प्रजापति की स्तुति में हिरण्यगर्भ सूक्त[2] उत्कृष्ट गीतिकाव्य है जिसके प्रत्येक मन्त्र के अन्त में आया है–कस्मै देवाय हविषा विधेम। इन्द्र के कई स्तोत्रों में उनके वीरकर्मों का वर्णन है जिससे ओजस्विता का संचार होता है, जैसे–

यः पृथिवीं व्यथमानामद्वंहद्, यः पर्वतान् प्रकुपियाँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वीरयो, यो द्यामस्तम्नात्स जनास इन्द्रः।।[3]

ऋग्वेद में ही प्रभातकाल की देवी उषा का वर्णन उसके सौन्दर्य–पक्ष को विशेष रूप से अंकित करके किया गया है। 'जिस प्रकार काम से पीड़ित कोई स्त्री सुन्दर वस्त्र धारण करके अपने पति के समक्ष अपने रूप को प्रदर्शित करती है, उसी प्रकार उषा हँसमुख तरुणी की भाँति अपने को विवृत करती है' –

जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।[4]

हे उषा देवी, तुम हमर हो, चमकीले रथ पर चली हुई सत्य–प्रिय–वाणी (सूनृता) को संचालित करके तुम बहुत शोभा पाओ, तुम्हारा रंग सोने जैसा है; विस्तृत तेज वाले सुनियन्त्रित अश्व तुम्हें यहाँ ले आयें–

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि, चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये।।[5]

इसी प्रकार अथर्ववेद में भूमि की स्तुति में गीति–काव्य का विन्यास है। पृथ्वी देवी के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति 63 मन्त्रों में अथर्वा ऋषि ने की है।[6] पृथ्वी के प्रत्येक गुण का वर्णन इस प्रसंग में हुआ है।

सामवेद का संगीत–पक्ष गीतिकाव्य के अनन्य गुण को विशेष रूप से धारण करता है। इसीलिए वैदिक युग की संस्कृत गीतिकाव्य के उद्भव के लिए ठोस धरातल देता है।

रामायण का उदय गीतिकाव्य के रूप में ही हुआ है। इसमें स्थल–विशेष पर ऋतु–वर्णन, स्त्री–सौन्दर्य का चित्रण, विरह–वर्णन, देव–स्तुति आदि गीतितत्त्व को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करते है। महाभारत में प्राप्त होनेवाली स्तुतियाँ भी गीतिकाव्य के सोपान के रूप में स्वीकृत हैं। गीता के एकादश अध्याय में भगवान् कृष्ण का विराट् रूप–वर्णन प्रकृष्ट स्तोत्र–काव्य है। पुराणों में भागवत, विष्णु, नारद आदि विविध देवों की स्तुतियों से भरे हैं। अध्यात्म–रामायण में भी राम की स्तुति ब्रह्म के रूप में की गयी है।

गीतिकाव्य वह काव्य–प्रकार है जिसमें कवि अपने अन्तरङ में स्थित कोमल भावों में से किसी एक को केन्द्र में रखकर कल्पना शक्ति के द्वारा उसे गेय बनाकर संक्षिप्त रूप में प्रकट करता है। हृदय में स्थित भाव का अतिरेक होने पर ही गीतिकाव्य की अभिव्यक्ति होती है। ऐसी रचना निर्मित की नहीं जाती, इसकी स्वतः स्फूर्ति होती है। कवि का हृदय सुख–दुःख या किसी धार्मिक–नैतिक भावना से उद्वेलित होकर सहसा काव्य के रूप में फूट पड़ता है। चिरकाल से उसकी संजोई हुई कल्पना प्रवाहित होने लगती है तथा गेय छन्दों या रागों में मृदु शब्द निर्गत होने लगते हैं। गीतिकाव्य के द्वारा कवि अपने हार्दिक आवेगों को परगम्य बना देता है तो उसे आनन्द की अनुभूति होती है। इसीलिए आधुनिक विद्वानों ने गीतिकाव्य के तीन प्रमुख तत्त्व माने हैं–भावातिरके, कल्पना और संगीत। जहाँ तक भावातिरेक का सम्बन्ध है वह किसी कोमल भाव का ही हो, रौद्र भाव का नहीं। प्रेम, शोक, भक्ति, नीति, वैराग्य आदि की भावनाएँ संस्कृत भाषा की गीतियों का विषय रही हैं। वैसे तो कवि और भावक के विषय में कहा गया है कि संसार के सभी विषयों को उनके द्वारा उद्भावित किया जा सकता है जिससे वे विषय रस और भाव का रूप ले लेते हैं, किन्तु गीतिकाव्य में सभी विषय नहीं आ सकते–केवल कोमल भावों का अतिरेक ही इनमें आवेगपूर्वक स्फुरित होता है। इन भावों का परस्पर मिश्रण भी अपेक्षित नहीं हैं, शोक में श्रृंगार या श्रृंगार में नीति का या वैराग्य का मिश्रण असंगत है। इसीलिए किसी एक भाव को केन्द्रित करके ही गीतिकाव्य का स्फुरण होता है। भर्तृहरि ने नीति, श्रृंगार और वैराग्य को पृथक्–पृथक् अभिव्यक्त किया है।

संक्षिप्तता भी गीतिकावय का प्रमुख लक्षण है। आवेग को विस्तार प्रदान करने से एक ही भाव की आवृत्ति होने लगती है, नीरसता छा जाती है। इसीलिए गीतिकाव्य प्रबन्ध–काव्यों का विस्तार नहीं पा सकते। कवि अपने आवेग को अत्यन्त संक्षेप में व्यक्त करता है, तभी वह गीतिकाव्य हो सकता है। इस संक्षिप्त रूप के बल पर काव्य का साधारणीकरण होता है–कवि की आत्मनिष्ठ अनुभूति जन–जन में पहुँच जाती है, प्रत्येक पाठक उसे अपनी अनुभूति मान लेता है। अन्त में गेयात्मकता का भी स्थान है। आरम्भ में यही तत्त्व प्रधान था जैसा कि इस काव्य–प्रकार के नाम से पता चलता है। गेयात्मक होने पर ही किसी काव्य को 'गीति' कह सकते हैं। संस्कृत के कुछ छन्दों में गान–तत्त्व अधिक है, इसीलिए कवियों ने इस छन्दों को गीतिकाव्यों में निविष्ट किया है। जयदेव–जैसे कवियों ने शुद्ध संगीतमय रागों का ही प्रयोग किया है। संक्षेप में 'गीतिकाव्य' का यह लक्षण दिया जा सकता है–

भावानामात्मनिष्ठानां कल्पनावलितं लघु।
स्फुरणं गेयरूपेण गीतिकाव्यं निगद्यते।।

संस्कृत गीतिकाव्यों में मुख्य रूप से श्रृंगार, नीति, विरह, वैराग्य, भक्ति, ऋतुवर्णन, देवस्तुति आदि में से किसी एक विषय को चुनकर उसे संवेगात्मक अभिव्यक्ति दी गयी है। मानव को अभिभूत करने के लिए इनमें आत्मा और विषय का साक्षात् संवाद निरूपित हुआ है क्योंकि आत्मा की स्वरूपोपलब्धि के बिना आनन्द की कल्पना सम्भव नहीं है। 'श्रृंगार' में प्रेमी–प्रेमिका के संयोग का, 'नीति' में नैतिक शिक्षाओं की महत्ता का, 'विरह' में प्रिय या प्रिया की उत्सुकता का, 'वैराग्य' में सांसारिक विषयों की क्षणभंगुरता का, 'भक्ति' में आराध्य देव के प्रति अनुरागातिशय का, 'ऋतुवर्णन' में विभिन्न ऋतुओं के अनुरूप प्राकृतिक परिवेश में मानवीय भावनाओं का और देवस्तुतियों में देव–विशेष की महिमा का संस्कृत कवियों ने स्वानुभूत अभिव्यञ्जन किया है।

सभी गीतिकाव्यों में रसोद्भावन अनिवार्य तत्त्व है। उपर्युक्त विषयों में श्रृंगार, करुण तथा शानत रस की निष्पत्ति होती है। श्रृंगार के अन्तर्गत संयोग और विप्रलम्भ दोनों रसों की पुष्टि हुई है। 'अमरुशतक' संभोग श्रृंगार का गीतिकाव्य में तो 'मेघदूत' विप्रलम्भ श्रृंगार का। शान्तरस के अन्तर्गत भक्ति, माधुर्य और वैराग्य–मूलक गीतिकाव्यों को रखा जाता है। किसी इष्ट जन के विनाश या स्थायी वियोग में करुण रस की निष्पत्ति होती है। केवल इन्हीं रसों का निवेश संस्कृत गीतिकाव्यों में होता है, अद्भुत, भयानक, बीभत्स आदि रसों का नहीं। मातृभूमि की वन्दना आदि में ईषद् वीररस की उद्भावना वाली गीतियाँ भी वर्त्तमान युग में आयी हैं।

संस्कृत गीतिकाव्यों में भाषा और भाव का समन्वय होता है। कुछ गीतिकाव्य (जैसे–जयदेव का गीतगोविन्द) तो 'कोमल–कान्त–पदावली' से सर्वतः आच्छन्न रहते हैं किन्तु अनेक वैसी अनुप्रास–युक्त एवं नाद–सौन्दर्य से अनुप्राणित न होने पर भी भाव–सौन्दर्य तथा गेयात्मकता से परिपूर्ण हैं जैसे–शिवमहिम्नः स्तोत्र। गुणों की दृष्टि से संस्कृत गीतिकाव्यों में प्रसाद तथा माधुर्य का समावेश रहता है। कोमल प्रकृति का चित्रण, प्रेम एवं विरह का उदार निरूपण, जीवन के हर्ष–विषाद की उद्दाम अभिव्यक्ति, आराध्य के प्रति सविनय समर्पण, अपने रागात्मक भावों का प्रसारण तथा कान्ता–सौन्दर्य का रेखाङङ्कन इन्हीं गुणों की अपेक्षा गीतिकाव्य रखता है।

संस्कृत गीतिकाव्यों के दो वर्ग हैं–(1) श्रृङ ारमूलक, तथा (2) भक्तिमूलक (स्तोत्रकाव्य)। सामान्य रूप से भक्तिमूलक गीतिकाव्य

'स्तोत्र' कहलाते हैं जिनमें अपने आराध्य देवता, गुरु या आचार्य के प्रति श्रद्धा–समन्वित काव्यकुसुमाञ्जलि अर्पित की जाती है। शृङ्गारमूलक गीतिकाव्यों में ऋतुवर्णन, सन्देश–प्रेषण, प्रेम तथा विरह की भावनाओं के आवेग आदि प्रकाशित होते हैं। इनका निरूपण पृथक्–पृथक् किया गया है।

**सन्दर्भाः –**


1. ऋग्वेद–1/7/7।
2. ऋग्वेद–10/121।
3. ऋग्वेद–2/12/2।
4. ऋग्वेद–1/124/7 उत्तरार्द्ध।
5. ऋग्वेद–3/61/2।
6. अथर्ववेद–12/1।